International Journal of Creative and Open Research in Engineering and Management
ISSN: 3108-1754 (Online)
Volume 02 Issue 09 September-2026 | Impact Factor: 3.5

अभिराजयशोभूषणम् में आधुनिक संवेदना और शास्त्रीय अनुशासन का समन्वय

गौरव त्रिपाठी

शोधार्थी

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

प्रो. (डॉ.) वंदना द्विवेदी

नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ

How to Cite this Article:

Tripati, G. (2026). अभिराजयशोभूषणम् में आधुनिक संवेदना और शास्त्रीय अनुशासन का समन्वय. International Journal of Creative and Open Research in Engineering and Management, <i>02</i>(9), 1-9. https://doi.org/10.55041/ijcope.v2i9.049

License:

This article is published under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author(s) and the source are credited.

© The Author(s). Published by International Journal of Creative and Open Research in Engineering and Management.

https://doi.org/10.55041/ijcope.v2i9.049

सारांश

संस्कृत साहित्य की जीवित परम्परा का मूल वैशिष्ट्य यह है कि उसने परिवर्तन को स्वीकार करते हुए भी अपने शास्त्रीय आधार को सर्वथा विस्मृत नहीं किया। आधुनिक संस्कृत साहित्य में सामाजिक जीवन, राजनीतिक विडम्बना, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, लोकजीवन, नवीन गीत-विधाओं, ग़ज़ल तथा छन्दोमुक्त कविता जैसी प्रवृत्तियों के विकास ने काव्यशास्त्र के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित किया कि नवीन साहित्य को केवल प्राचीन प्रतिमानों से किस सीमा तक समझा जा सकता है। आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित *अभिराजयशोभूषणम्* इस प्रश्न का एक महत्त्वपूर्ण उत्तर प्रस्तुत करता है। सन् 2006 में प्रकाशित यह ग्रन्थ परिचयोन्मेष, शरीरतत्त्वोन्मेष, आत्मतत्त्वोन्मेष, निर्मितितत्त्वोन्मेष और प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष में विन्यस्त है तथा काव्यलक्षण, रस, ध्वनि, दोष, गुण, रीति और अलंकार जैसी परम्परागत अवधारणाओं के साथ नवीन साहित्यिक रूपों का भी शास्त्रीय अनुशीलन करता है।[1] इसीलिए दिल्ली विश्वविद्यालय ने भी इसे आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र का ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना है जिसमें विभिन्न काव्यशास्त्रीय सम्प्रदायों का संतुलित समन्वय दिखाई देता है।[2]

प्रस्तुत शोध-पत्र में *अभिराजयशोभूषणम्* के इसी द्वैध वैशिष्ट्य—**आधुनिक संवेदना और शास्त्रीय अनुशासन**—का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अभिराज आधुनिकता को शास्त्र-विरोध के रूप में स्वीकार नहीं करते, वे नवीन साहित्यिक अनुभवों के अनुरूप शास्त्र की व्याख्यात्मक सीमा का विस्तार करते हैं। छन्दोमुक्त काव्य, गलज्जलिका, आधुनिक गीत एवं लोकगीतों के लक्षण-निर्धारण में उनकी दृष्टि नवीन है, किन्तु लय, रचना-विधान, रसात्मकता, औचित्य और काव्यत्व की कसौटियों के प्रति उनका आग्रह शास्त्रीय अनुशासन से सम्बद्ध है। अतः *अभिराजयशोभूषणम्* को परम्परा और आधुनिकता के संघर्ष का नहीं, बल्कि उनके सर्जनात्मक संवाद और समन्वय का ग्रन्थ कहा जा सकता है।

कूटशब्द : अभिराजयशोभूषणम्, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, आधुनिक संवेदना, शास्त्रीय अनुशासन, आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, छन्दोमुक्त काव्य, गलज्जलिका, लोकगीत, रस, अलंकार।

प्रस्तावना

साहित्य अपने समय से निरपेक्ष रहकर जीवित नहीं रह सकता। प्रत्येक युग अपनी समस्याओं, अनुभूतियों, मूल्यों और अभिव्यक्ति के नवीन रूपों को जन्म देता है। यदि साहित्य केवल अतीत के अनुभवों और अभिव्यक्ति-प्रणालियों को यथावत् दोहराता रहे तो वह परम्परा तो हो सकता है, किन्तु जीवित रचनात्मकता नहीं। दूसरी ओर यदि नवीनता के आग्रह में वह अपने सौन्दर्यात्मक अनुशासन, भाषिक संस्कार और साहित्यिक परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न हो जाए तो उसकी सांस्कृतिक निरन्तरता संकट में पड़ सकती है। साहित्य की वास्तविक सर्जनात्मकता इन दोनों ध्रुवों—**परम्परा और परिवर्तन**—के बीच संतुलन स्थापित करने में निहित होती है।

संस्कृत साहित्य के सन्दर्भ में यह प्रश्न और भी महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के पास अत्यन्त समृद्ध काव्यशास्त्रीय परम्परा है। भरत का रस-सिद्धान्त, भामह और दण्डी का अलंकार-विचार, वामन की रीति, आनन्दवर्धन की ध्वनि, कुन्तक की वक्रोक्ति, क्षेमेन्द्र का औचित्य, मम्मट का समन्वय तथा विश्वनाथ का रसात्मक काव्य-दर्शन—इन सबने भारतीय साहित्य-चिन्तन को अत्यन्त विकसित आधार प्रदान किया है।[3] किन्तु आधुनिक काल में जब संस्कृत में नवीन सामाजिक विषयों, मुक्तछन्द, ग़ज़ल, नवीन गीतों और लोक-रूपों की रचना होने लगी, तब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या इन विधाओं की समीक्षा केवल उन्हीं प्रतिमानों के आधार पर की जाएगी जिनका निर्माण प्राचीन साहित्यिक परिस्थितियों में हुआ था। इस समस्या का समाधान प्राचीन काव्यशास्त्र के परित्याग में नहीं, बल्कि उसके पुनर्पाठ में निहित था। आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने इसी दिशा में प्रयास किया। आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र का *अभिराजयशोभूषणम्* इस प्रयास का उल्लेखनीय उदाहरण है। इस ग्रन्थ में शास्त्र की आधारभूत अवधारणाएँ सुरक्षित हैं, परन्तु शास्त्र को बन्द व्यवस्था नहीं माना गया। नवीन रचनात्मक अनुभव को समझने के लिए उसके भीतर नवीन वर्गों, लक्षणों और व्याख्याओं का समावेश किया गया है। इस दृष्टि से *अभिराजयशोभूषणम्* का महत्त्व केवल आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र के एक ग्रन्थ के रूप में नहीं, बल्कि **शास्त्र की गतिशीलता के प्रमाण** के रूप में भी है।

अध्ययन के उद्देश्य एवं शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं—*अभिराजयशोभूषणम्* में आधुनिकता की अवधारणा को समझना, उसमें विद्यमान पारम्परिक काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का परीक्षण करना, आधुनिक साहित्यिक विधाओं के प्रति अभिराज की दृष्टि का विश्लेषण करना तथा यह निर्धारित करना कि नवीनता और शास्त्रीय अनुशासन का पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार निर्मित होता है।

शोध की प्रकृति मुख्यतः **वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक** है। *अभिराजयशोभूषणम्* को प्राथमिक आधार मानते हुए संस्कृत की प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा तथा आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र से सम्बन्धित प्रामाणिक अध्ययनों का सहारा लिया गया है। विशेष रूप से छन्दोमुक्त काव्य और नवीन साहित्यिक विधाओं पर उपलब्ध प्रकाशित शोध-सामग्री को प्रमाण के रूप में ग्रहण किया गया है।

अभिराजयशोभूषणम् : शास्त्रीय संरचना में आधुनिक दृष्टि

अभिराजयशोभूषणम् की रचना-विधि पर दृष्टिपात करने से ही स्पष्ट हो जाता है कि अभिराज का उद्देश्य परम्परागत काव्यशास्त्र को निरस्त करना नहीं था। ग्रन्थ में **परिचयोन्मेष, शरीरतत्त्वोन्मेष, आत्मतत्त्वोन्मेष, निर्मितितत्त्वोन्मेष तथा प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष**—ये पाँच प्रमुख विभाग हैं।[4] आधुनिक छन्दोमुक्त काव्य पर हुए शोध में भी ग्रन्थ की यही पाँच उन्मेषात्मक संरचना प्रमाणित की गई है।

इन नामों में ही अभिराज की शास्त्रीय मानसिकता का परिचय प्राप्त होता है। काव्य का 'शरीर', उसका 'आत्मतत्त्व', उसकी 'निर्मिति' और उसके विविध प्रकीर्ण तत्त्व—ये सभी संज्ञाएँ संस्कृत की पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रीय पद्धति से सम्बद्ध हैं। किन्तु इस पारम्परिक संरचना के अन्तर्गत आधुनिक विधाओं का प्रवेश ग्रन्थ को विशिष्ट बनाता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में इस ग्रन्थ के अध्ययन का उद्देश्य काव्यलक्षण, रस, ध्वनि, दोष, गुण, रीति और अलंकार के बीच संतुलित सम्बन्ध को समझना बताया गया है। वहाँ स्पष्टतः यह स्वीकार किया गया है कि *अभिराजयशोभूषणम्* विभिन्न काव्यशास्त्रीय सम्प्रदायों का समन्वय करके काव्य की रमणीयता

के विविध कारणों को समझने का प्रयास करता है।[5] अतः अभिराज के यहाँ आधुनिकता किसी रिक्त भूमि पर निर्मित नहीं होती, उसकी जड़ें संस्कृत साहित्य की दीर्घ शास्त्रीय परम्परा में विद्यमान हैं।

आधुनिक संवेदना : अर्थ और स्वरूप

यहाँ 'आधुनिक संवेदना' से तात्पर्य केवल वर्तमान युग में रचित साहित्य नहीं है। आधुनिकता का वास्तविक सम्बन्ध उस चेतना से है जो परिवर्तित समाज, व्यक्ति, राजनीति, संस्कृति और साहित्यिक अभिव्यक्ति को नई दृष्टि से देखती है। आधुनिक कवि का अनुभव-विस्तार केवल नायक-नायिका, ऋतु-वर्णन, राजवंश अथवा पौराणिक आख्यान तक सीमित नहीं रहता। उसके साहित्य में लोकतन्त्र, सामाजिक विषमता, व्यक्ति की स्वतन्त्रता, राजनीति का विघटन, आत्मसंघर्ष, लोकजीवन, समकालीन विडम्बना और परिवर्तित मानवीय सम्बन्ध भी प्रवेश करते हैं। इसी के साथ आधुनिकता अभिव्यक्ति के स्तर पर भी परिवर्तन लाती है। कविता का छन्द से सम्बन्ध पुनर्विचार का विषय बनता है, ग़ज़ल जैसी अन्य भाषाओं में विकसित विधाएँ संस्कृत में प्रवेश करती हैं, लोकगीत और बोलचाल के सांस्कृतिक रूप काव्यशास्त्रीय विमर्श में स्थान प्राप्त करते हैं। *अभिराजयशोभूषणम्* में आधुनिक संवेदना का अर्थ इसी बहुस्तरीय परिवर्तन की स्वीकृति है। अभिराज यह आग्रह नहीं करते कि आधुनिक कवि कालिदास अथवा भारवि की भाषा और रचना-पद्धति का अनुकरण मात्र करे। उनके लिए आधुनिक कवि को अपने समय को व्यक्त करने का अधिकार है, किन्तु वह अभिव्यक्ति साहित्यिक और कलात्मक अनुशासन से रिक्त नहीं होनी चाहिए। यहीं से आधुनिक संवेदना और शास्त्रीय अनुशासन के वास्तविक समन्वय की शुरुआत होती है।

छन्दोमुक्त काव्य : आधुनिक स्वतन्त्रता का शास्त्रीय नियमन

आधुनिक संस्कृत कविता में छन्दोमुक्त रचना का विकास अभिराज के सामने एक महत्त्वपूर्ण काव्यशास्त्रीय प्रश्न था। प्राचीन संस्कृत काव्य में छन्द की प्रतिष्ठा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। वैदिक साहित्य से लौकिक संस्कृत काव्य तक छन्द ने ध्वनि, लय और स्मरणीयता को व्यवस्थित किया। किन्तु आधुनिक कविता में निर्धारित वर्णिक अथवा मात्रिक छन्दों से मुक्त अभिव्यक्ति का विस्तार हुआ।

अभिराज इस नवीन प्रवृत्ति को अस्वीकार नहीं करते। बल्कि *अभिराजयशोभूषणम्* में छन्दोमुक्त काव्य के लिए स्वतंत्र लक्षण प्रस्तुत किया गया। इससे सम्बन्धित दो कारिकाएँ प्रकाशित शोध में इस प्रकार उद्धृत हैं—

"छन्दोमुक्तं किमप्येव वाङ्मये नहि विद्यते।
वस्तुतः परमार्थोऽयं प्रतिषेद्धुं न शक्यते॥"[6]

तथा—

"एवम्भूतेऽपि यत्काव्यं वर्णमात्रागणक्रमैः।
न प्रणीतं तदेवाद्य छन्दोमुक्तं समुच्यते॥"[7]

इन कारिकाओं में अभिराज की समन्वयवादी दृष्टि अपने सर्वाधिक स्पष्ट रूप में सामने आती है। वे एक ओर आधुनिक 'मुक्तछन्द' को स्वीकार करते हैं, दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि पूर्णतः लयरहित अथवा छन्दहीन वाणी की कल्पना ही संदिग्ध है। प्रकाशित अध्ययन में अभिराज की दृष्टि को इस रूप में व्याख्यायित किया गया है कि छन्दोमुक्त काव्य वर्ण, मात्रा और गण के परम्परागत क्रम से नियन्त्रित नहीं होता, फिर भी उसके भीतर स्वाभाविक लय रहती है।[8]

यहाँ आधुनिकता का अर्थ **अनुशासन से मुक्ति नहीं, अनुशासन के स्वरूप का परिवर्तन** है। परम्परागत कविता का अनुशासन बाह्य छन्द-विधान में अधिक स्पष्ट था, आधुनिक मुक्तछन्द में वही अनुशासन अन्तर्लय, शब्द-संयोजन, विराम, भावप्रवाह और ध्वनि-संतुलन में स्थित हो जाता है। अभिराज इस अन्तर को पहचानते हैं। अतः उनके यहाँ छन्दोमुक्त कविता स्वच्छन्द भाषिक गद्य नहीं, बल्कि **लयवाहित कलात्मक अभिव्यक्ति** है। यही दृष्टि शास्त्रीय अनुशासन को बचाते हुए आधुनिक काव्य-स्वतन्त्रता को वैधता प्रदान करती है।

समकालीन सामाजिक संवेदना और छन्दोमुक्त अभिव्यक्ति

अभिराजयशोभूषणम् में आधुनिक साहित्य की स्वीकृति केवल बाह्य विधागत प्रयोग तक सीमित नहीं है। छन्दोमुक्त काव्य के उदाहरण के रूप में रेवाप्रसाद द्विवेदी की ऐसी रचना उद्धृत की गई है जिसमें स्वतन्त्रता की आड़ में स्वार्थ, दूसरों की निन्दा, सामाजिक अवरोध, राजनीतिक अवसरवाद और संकीर्ण मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। सम्बन्धित शोध में भी इस कविता को समकालीन समाज की स्वार्थप्रधान, अन्धविश्वासी और संकीर्ण वृत्तियों का प्रतिबिम्ब माना गया है।[9]

यह तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत काव्यशास्त्र का आधुनिक विकास केवल इस प्रश्न से सम्बद्ध नहीं कि कविता किस छन्द में लिखी जाए, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कविता **किस जीवन को अभिव्यक्त करती है**। अभिराज की दृष्टि आधुनिक संस्कृत काव्य को अपने समय के सामाजिक प्रश्नों से सम्बद्ध होने का अधिकार प्रदान करती है। राजनीति, समाज, स्वार्थ, अन्धविश्वास अथवा सार्वजनिक जीवन की विसंगतियाँ भी संस्कृत काव्य की विषयवस्तु हो सकती हैं। इससे संस्कृत केवल देवस्तुति, प्राचीन आख्यान अथवा परम्परागत श्रृंगार तक सीमित नहीं रहती, बल्कि आधुनिक मनुष्य के अनुभव की भाषा बनती है। किन्तु यहाँ भी सामाजिक कथन मात्र कविता नहीं बन जाता। यदि किसी वक्तव्य में केवल राजनीतिक विचार है, परन्तु भाषा में लय, व्यञ्जना, कलात्मकता और अनुभूति नहीं, तो वह घोषणापत्र हो सकता है—काव्य नहीं। अभिराज का शास्त्रीय अनुशासन आधुनिक विषयवस्तु को इसी साहित्यिक कसौटी से जोड़ता है।

गलज्जलिका : बाह्य साहित्यिक रूप का संस्कृत में आत्मसात्

आधुनिक संस्कृत साहित्य में ग़ज़ल का आगमन साहित्यिक आदान-प्रदान का रोचक उदाहरण है। ग़ज़ल की उत्पत्ति संस्कृत काव्य-परम्परा के भीतर नहीं हुई, वह अरबी-फारसी-उर्दू परम्परा से विकसित होकर संस्कृत में आई। प्रश्न यह था कि संस्कृत काव्यशास्त्र इस आयातित विधा को किस प्रकार ग्रहण करे।

अभिराज का उत्तर न तो कठोर अस्वीकृति है और न अन्धानुकरण। वे ग़ज़ल को संस्कृत में स्वीकार करते हुए उसके लिए **गलज्जलिका** जैसी संस्कृताभिमुख संज्ञा का प्रयोग करते हैं तथा उसके संरचनात्मक अवयवों का शास्त्रीय विवेचन करते हैं। उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की आधुनिक संस्कृत साहित्य सम्बन्धी अध्ययन-सामग्री में *अभिराजयशोभूषणम्* के प्रकीर्णोन्मेष की कारिकाओं 74–80 के आधार पर ग़ज़ल के मतला, शेर और मकता आदि अवयवों के उनके विवेचन को उद्धृत किया गया है।[10]

इस प्रक्रिया में दो बातें एक साथ घटित होती हैं। पहली—संस्कृत साहित्य दूसरी भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों के प्रति खुला रहता है। दूसरी—नवीन रूप का प्रवेश बिना समीक्षा और बिना संरचनात्मक अनुशासन के नहीं होता। यही अभिराज की आधुनिकता का स्वरूप है। वे ग़ज़ल को इसलिए अस्वीकार नहीं करते कि उसका उद्भव संस्कृत में नहीं हुआ, परन्तु उसे ग्रहण करते हुए उसके लक्षण, अंग और स्वरूप का निर्धारण करते हैं। इसे साहित्यिक **आत्मसातीकरण** कहा जा सकता है—न अन्धानुकरण, न सांस्कृतिक निषेध। इस प्रकार आधुनिक संवेदना के भीतर अन्तरसांस्कृतिक संवाद की सम्भावना उत्पन्न होती है और शास्त्रीय अनुशासन उस संवाद को आलोचनात्मक विवेक प्रदान करता है।

लोकगीतों का शास्त्रीय विमर्श : शास्त्र और लोक का मिलन

संस्कृत काव्यशास्त्र की पारम्परिक रचनाएँ प्रायः प्रतिष्ठित साहित्यिक विधाओं के विवेचन पर केन्द्रित रही हैं। अभिराज इस सीमा को विस्तृत करके लोकगीतों को भी काव्यशास्त्रीय विमर्श में लाते हैं। *अभिराजयशोभूषणम्* के प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष में गीत और लोकगीत के साथ कजरी आदि विभिन्न लोकगीतात्मक रूपों का लक्षण एवं उदाहरण सहित विवेचन किया गया है।[11] आधुनिक छन्दोमुक्त काव्य पर प्रकाशित अध्ययन में भी ग्रन्थ के अन्तर्गत गीतितत्त्व, गलज्जलिका, छन्दोमुक्त काव्य और विभिन्न लोकगीतों के लक्षण-निर्धारण का उल्लेख स्पष्टतः मिलता है। यह केवल विधाओं की संख्या बढ़ाने का प्रयास नहीं है। इसके पीछे साहित्य-दृष्टि का महत्त्वपूर्ण परिवर्तन

© 2026 The Author(s). Published by IJCOPE Journal. Website: https://ijcope.org/

है। लोकजीवन को काव्यशास्त्र के बाहर रखने का अर्थ यह होगा कि शास्त्र केवल अभिजात रचना-परम्परा का नियामक बन जाए। अभिराज लोक की जीवित सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को शास्त्रीय चिन्तन में स्थान प्रदान करके संस्कृत काव्यशास्त्र की परिधि को विस्तृत करते हैं। यहाँ 'लोक' और 'शास्त्र' विरोधी नहीं रह जाते। लोक शास्त्र को जीवित अनुभव देता है और शास्त्र लोक-अभिव्यक्ति को व्यवस्थित साहित्यिक विवेचन का आधार प्रदान करता है। आधुनिक संवेदना का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यही लोकाभिमुखता है। साहित्यिक सौन्दर्य केवल राजसभा, अभिजात संस्कृति अथवा संस्कारित पाठक के अनुभव में नहीं, लोकजीवन की सामूहिक स्मृति, उत्सव, ऋतु, श्रम, प्रेम और सामाजिक संस्कारों में भी उपलब्ध है।

रस, ध्वनि, गुण और अलंकार : आधुनिकता के भीतर शास्त्रीय आधार

यदि *अभिराजयशोभूषणम्* केवल मुक्तछन्द, ग़ज़ल और लोकगीतों की चर्चा करता, तो उसे आधुनिक साहित्यिक विधाओं का परिचय-ग्रन्थ कहा जा सकता था। उसकी वास्तविक काव्यशास्त्रीय महत्ता इस तथ्य में है कि आधुनिक विधाओं की स्वीकृति के साथ **रस, ध्वनि, गुण, दोष, रीति और अलंकार** जैसे पारम्परिक तत्त्वों का गम्भीर विवेचन भी उसमें उपस्थित है। दिल्ली विश्वविद्यालय के आधिकारिक पाठ्यक्रम ने इसी विशेषता को रेखांकित करते हुए *अभिराजयशोभूषणम्* को आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र का ऐसा ग्रन्थ माना है जिसमें इन सभी अवधारणाओं के प्रति 'संतुलित दृष्टिकोण' दिखाई देता है।[12] यह सन्तुलन अभिराज की आलोचनात्मक दृष्टि की कुंजी है। रस यह सुनिश्चित करता है कि कविता केवल सूचना न बने। ध्वनि उसे प्रत्यक्ष कथन से आगे अर्थ की बहुस्तरीयता प्रदान करती है। गुण भाषा और अभिव्यक्ति की विशिष्टता को निर्धारित करते हैं। अलंकार काव्य-सौन्दर्य को संवर्धित करते हैं। रीति अभिव्यक्ति की शैलीगत संरचना से सम्बद्ध होती है और दोष-विचार यह बताता है कि साहित्यिक स्वतन्त्रता असीमित भाषिक अव्यवस्था नहीं है।

अतः आधुनिक कवि को नवीन विषय चुनने की स्वतन्त्रता है, नवीन विधा अपनाने की स्वतन्त्रता है और स्थापित छन्द से बाहर जाने की भी स्वतन्त्रता है, परन्तु काव्यत्व के लिए उसे कलात्मक प्रभाव, अर्थसौन्दर्य, लय, औचित्य और भावात्मकता की कसौटी से गुजरना ही पड़ेगा। यहीं अभिराज आधुनिकता को **साहित्यिक उत्तरदायित्व** से जोड़ते हैं।

शास्त्रीय अनुशासन का अर्थ रूढ़िवाद नहीं

अभिराज की दृष्टि को समझने में सबसे बड़ी भूल यह होगी कि 'शास्त्रीय अनुशासन' को 'पुराने नियमों की अपरिवर्तनीय सत्ता' मान लिया जाए। भारतीय काव्यशास्त्र स्वयं एक सतत् विकासशील परम्परा है। यदि शास्त्र स्थिर होता तो भामह के बाद वामन, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, मम्मट और जगन्नाथ के पृथक् सिद्धान्तों की आवश्यकता ही नहीं होती। प्रत्येक आचार्य ने पूर्ववर्ती परम्परा से संवाद करते हुए नई समस्या का समाधान दिया। आनन्दवर्धन ने अलंकार और गुण के ऊपर ध्वनि की सत्ता स्थापित की, कुन्तक ने वक्रोक्ति का व्यापक सिद्धान्त प्रस्तुत किया, मम्मट ने विभिन्न सम्प्रदायों का समन्वय किया, जगन्नाथ ने रमणीयता को काव्य की कसौटी बनाया।[13] अभिराज इसी परम्परा के आधुनिक चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उनके लिए शास्त्र का वास्तविक उद्देश्य साहित्य को बाँधना नहीं, बल्कि उसकी प्रकृति को समझना है। इसीलिए जब साहित्य की प्रकृति बदलती है तो शास्त्र को भी अपना विश्लेषणात्मक उपकरण विस्तृत करना पड़ता है। यह दृष्टिकोण परम्परा का त्याग नहीं है। वस्तुतः यही परम्परा का वास्तविक सम्मान है—उसे संग्रहालय में सुरक्षित वस्तु न बनाकर जीवित बौद्धिक प्रक्रिया के रूप में आगे बढ़ाना।

नवोन्मेष और मर्यादा का द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध

आधुनिक साहित्य में 'स्वतन्त्रता' और 'प्रयोग' दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द हैं, परन्तु प्रत्येक प्रयोग स्वतः श्रेष्ठ साहित्य नहीं बन जाता। नवीनता तभी सार्थक होती है जब उसके पीछे रचनात्मक आवश्यकता हो। अभिराज के काव्यशास्त्र की एक बड़ी उपलब्धि यह है कि वह नवोन्मेष को स्वीकार करते हुए उसके भीतर साहित्यिक मर्यादा की आवश्यकता बनाए रखता है। उदाहरणतः छन्दोमुक्त कविता में परम्परागत गण-विधान नहीं है, किन्तु लय है। गलज्जलिका विदेशी मूल की विधा है, किन्तु उसके अंगों और संरचना की पहचान है।

लोकगीत शास्त्रीय महाकाव्य नहीं है, किन्तु उसका अपना रूप, प्रयोजन और सौन्दर्य-विधान है। इससे यह सिद्ध होता है कि आधुनिकता का अर्थ **अरूपता** नहीं है। प्रत्येक नवीन साहित्यिक विधा का भी कोई न कोई अन्तःस्वरूप होता है। शास्त्र का कार्य उस अन्तःस्वरूप को पहचानना, परिभाषित करना और विश्लेषित करना है। यहाँ अभिराज का दृष्टिकोण अत्यन्त आधुनिक है। वे शास्त्र को आदेशात्मक सत्ता की अपेक्षा व्याख्यात्मक अनुशासन में रूपान्तरित करते दिखाई देते हैं।

परम्परा और आधुनिकता : विरोध नहीं, संवाद

प्रायः आधुनिकता को परम्परा-विरोध से जोड़ा जाता है। किन्तु साहित्य का इतिहास यह बताता है कि श्रेष्ठ आधुनिकता प्रायः परम्परा की गहरी समझ से उत्पन्न होती है। जो रचनाकार परम्परा को जानता ही नहीं, उसकी नवीनता कई बार केवल अज्ञान का परिणाम हो सकती है, जबकि परम्परा के भीतर रहते हुए उसकी सीमाओं का अतिक्रमण करना वास्तविक सर्जनात्मक आधुनिकता है। *अभिराजयशोभूषणम्* इसी दूसरे प्रकार की आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता है। अभिराज रस को छोड़कर आधुनिक नहीं बनते, वे आधुनिक कविता में रसात्मकता की नई सम्भावनाएँ खोजते हैं। वे छन्द की उपेक्षा करके मुक्तछन्द की स्थापना नहीं करते, वे छन्दोमुक्त कविता के भीतर विद्यमान अन्तर्लय को पहचानते हैं। वे संस्कृत की शुद्धता के नाम पर ग़ज़ल को निषिद्ध नहीं करते, उसका संस्कृत काव्य-परम्परा के अनुकूल पुनर्पाठ करते हैं। वे शास्त्रीय साहित्य के सम्मान में लोकगीत को निम्नतर नहीं मानते, उसे भी काव्यशास्त्रीय परीक्षण की परिधि में लाते हैं। इसलिए अभिराज की आधुनिकता मूलतः **समावेशी आधुनिकता** है।

आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र में अभिराजयशोभूषणम् की प्रासंगिकता

आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र के अध्ययन में *अभिराजयशोभूषणम्* की स्थायी प्रासंगिकता का एक अकादमिक प्रमाण यह है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के नवीन एम.ए. संस्कृत पाठ्यक्रम में इसे स्वतंत्र चार-क्रेडिट पाठ्यपत्र के रूप में रखा गया है। उसके पाठ्य उद्देश्यों में आधुनिक काव्य की मूल पारिभाषिक अवधारणाओं, अर्थ-सिद्धान्त, व्यञ्जना, रस और आलोचनात्मक विश्लेषण को समझने की क्षमता विकसित करना सम्मिलित है।[14] इससे स्पष्ट है कि ग्रन्थ केवल ऐतिहासिक अध्ययन की वस्तु नहीं रहा, बल्कि आधुनिक संस्कृत काव्य-मीमांसा के शिक्षण और आलोचना में सक्रिय रूप से उपयोगी माना जा रहा है। इस उपयोगिता का कारण उसका समन्वयकारी चरित्र है। विद्यार्थी इसके माध्यम से एक ओर संस्कृत काव्यशास्त्र की मूल अवधारणाओं को समझ सकता है और दूसरी ओर यह देख सकता है कि उन्हीं अवधारणाओं के आधार पर आधुनिक कविता की नई समस्याओं से किस प्रकार संवाद किया जा सकता है।

निष्कर्ष

अभिराजयशोभूषणम् में आधुनिक संवेदना और शास्त्रीय अनुशासन का सम्बन्ध विरोधात्मक नहीं, बल्कि परस्पर पूरक है। आचार्य अभिराज राजेन्द्र मिश्र के लिए आधुनिकता का अर्थ संस्कृत काव्यशास्त्र की दीर्घ परम्परा से विच्छेद नहीं है। इसके विपरीत वे परम्परा में निहित सौन्दर्यशास्त्रीय विवेक को आधुनिक साहित्यिक अनुभवों के अनुकूल विस्तृत करते हैं। छन्दोमुक्त काव्य इसका सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण है। अभिराज आधुनिक कवि को परम्परागत वर्णिक और मात्रिक छन्दों से बाहर जाने की स्वीकृति देते हैं, किन्तु कविता से लय की अपेक्षा समाप्त नहीं करते। इस प्रकार बाह्य अनुशासन के स्थान पर आन्तरिक लय को प्रतिष्ठित किया जाता है। गलज्जलिका के माध्यम से वे अन्य भाषायी साहित्यिक परम्पराओं से संवाद की सम्भावना स्वीकार करते हैं, किन्तु उसके अंगों और रचना-विधान का विवेचन करके उसे शास्त्रीय परीक्षण के अन्तर्गत लाते हैं। लोकगीतों का समावेश शास्त्र को अभिजात साहित्यिक संसार से निकालकर लोकजीवन की ओर विस्तृत करता है। इसी के साथ रस, ध्वनि, दोष, गुण, रीति और अलंकार जैसे पारम्परिक तत्त्वों का संरक्षण यह स्पष्ट करता है कि अभिराज नवीनता को सौन्दर्यात्मक अनुशासन से पृथक् नहीं करते। उनके लिए विषय और विधा बदल सकते हैं, किन्तु काव्य को काव्य बनाने वाली कलात्मकता, अर्थगर्भता, लय, अनुभूति और आस्वाद की आवश्यकता बनी रहती है। अतः *अभिराजयशोभूषणम्* की वास्तविक मौलिकता न तो केवल नई विधाओं के लक्षण निर्धारित करने में है और न केवल प्राचीन काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों को पुनः प्रस्तुत करने में। उसकी मौलिकता इन दोनों के बीच **सृजनात्मक मध्यभूमि** निर्मित करने में है।

यह ग्रन्थ हमें बताता है कि परम्परा तभी सार्थक है जब वह नए अनुभव के लिए स्थान बनाए और आधुनिकता तभी स्थायी साहित्यिक मूल्य प्राप्त करती है जब उसमें सौन्दर्यबोध एवं अनुशासन विद्यमान हो। इस दृष्टि से *अभिराजयशोभूषणम्* आधुनिक संस्कृत साहित्य में **परम्परा की जड़ता और आधुनिकता की उच्छृंखलता—दोनों से बचते हुए एक सन्तुलित काव्यशास्त्रीय मार्ग** प्रस्तुत करता है। यही उसका आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र में विशिष्ट और दीर्घकालिक महत्त्व है।

सन्दर्भ-सूची

1. मिश्र, अभिराज राजेन्द्र. *अभिराजयशोभूषणम्*. इलाहाबाद : वैजयन्त प्रकाशन, 2006।
2. मिश्र, अभिराज राजेन्द्र. *संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र*. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
3. भरतमुनि. *नाट्यशास्त्र*।
4. भामह. *काव्यालंकार*।
5. दण्डी. *काव्यादर्श*।
6. वामन. *काव्यालंकारसूत्रवृत्ति*।
7. आनन्दवर्धन. *ध्वन्यालोक*।
8. अभिनवगुप्त. *ध्वन्यालोकलोचन*।
9. कुन्तक. *वक्रोक्तिजीवितम्*।
10. क्षेमेन्द्र. *औचित्यविचारचर्चा*।
11. मम्मट. *काव्यप्रकाश*।
12. विश्वनाथ कविराज. *साहित्यदर्पण*।
13. पण्डितराज जगन्नाथ. *रसगङ्गाधर*।
14. पाण्डेय, रमाकान्त. *आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्रसमीक्षणम्*. जयपुर : जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, 2009।